पुरुष मानसिकता से जूझती महिलाएँ

उस दिन 'विश्व महिला दिवस' के मुबारक मौके पर अपने मुल्क के जाँबाज पुरुषों ने फिर एक बार द्रौपदी के चीरहरण का इतिहास दुहराया। शाबाश अपने देश के इतिहास-लविंग लोगों। कमाल की पुरुषत्व पर नाज़ करने वाली बात है कि ऐसे विशाल और आध्यात्मिक देश के सबसे बड़े सदन में विद्वान एंव वरिष्ठ जनप्रतिनिधियों की काया में दुशासन की रूह घुस गई और उन्होनें अट्टाहासी मुद्रा में महिला विधयेक का चीरहरण कर दिया। यहाँ भी पाण्डव सिर झुकाए सब कुछ देखते-सुनते रहे कि कहीं उनका सिंहासन डोल न जाए। उधर देश भर में 'महिला दिवस' पर डुगडुगी बजा कर 'नारी तुम केवल श्रद्धा' गाते-बजाते जुलूस पर जुलूस निकाला जा रहा था। अखबारों ने अन्य खबरों को दरकिनार कर सोनिया गाँधी, सुषमा स्वराज, सानिया मिर्ज़ा, ऐश्वर्या राय वगैरह-वगैरह की फोटो छाप कर नारी-बिरादरी को दुनिया के सर्वोच्च शिखर पर बैठाने की कवायद की। मगर राज्यसभा यानी इण्डियन हाउस ऑफ लॉर्डस में दुशासन की शैतानी रूह घुस कर विधयेक की धज्जियां उड़ा रहा था। उसी अखबार के ठीक नीचे बतौर तोहफा भेंट किया गया कि एक दलित महिला को बलात्कार का शिकार बनाने के बाद जला दिया गया। कभी किसी ने सोचा कि आखिर वह सीन देखकर दुनिया के लोग क्या कहते होंगे?

दूसरे दिन वही विधयेक किसी जादू कि छड़ी घुमा कर पास करने कि खबर आई तो पटाखों पर पटाखें छुड़ाये जाने लगे। पहले ना-ना फिर हाँ-हाँ। चलिये देर आयद दुरुस्त आयद। जरूर खुशी कि बात है। मगर अफसोस तो होना लाज़मी है कि जिस देश में रज़िया सुल्तान और झाँसी कि रानी की दुहाई दे कर सदन को सुशोभित करती महिलायें उस वक़्त मूक दर्शक क्यों बनी रहीं जब कुछ लोग विधयेक को चिंदी-चिंदी कर के हवा में उड़ा रहे थे? मतलब साफ है कि इस देश कि जागरूक महिलाओं के संघर्ष से नहीं बल्कि पुरुष प्रधान समाज के अलम्बरदारों की कृपा से विधयेक पारित किया गया और शायद ही नाटक के बाद लोकसभा भी पारित कर दें।

अब एक सवाल जेहन में उठा करता है कि महिला आरक्षण विधयेक महिला राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के बाद कानून का जामा पहन लेता है तो क्या गारंटी है कि यह पुरुष प्रधान समाज उसे बिना किसी पैतरेंबाजी के स्वीकार कर लेगा? क्योंकि इसके पूर्व भी बाल विवाह, दहेज उन्मूलन और सती प्रथा से सम्बन्धित विधयकों ने कानूनी जामा पहना। प्रगतिशील समाज की तस्वीर उभरी लेकिन क्या उसे लागू करने में हमारे रहनुमा खरे उतर रहे हैं आज भी सुदूर गाँव में बाल विवाह का चलन जारी है देश के कई इलाकों में आज भी सती प्रथा चल रही है और दहेज... क्या कहने हैं इसके? इस दानव ने तो क्या गाँव क्या शहर, क्या शिक्षित और क्या अशिक्षित सब पर हावी दिखाई दे रहा है? यहाँ तक कि कानून बनाने

वालों से लेकर कानून का कठोरता से पालन कराने वालों को दहेज की बीमारी ने बुरी तरह जकड़ रखा है। ऐसे कानून से क्या फायदा? क्योंकि मानसिकता वही है। आज का पुरुष अपने पुरुषत्व के मंच पर 'नारी सशक्तिकरण' के नाम पर पत्र-पुष्प चढ़ाते हुए रोज मंत्र बांचता है "या देवी सर्वभूतेष शक्ति रुपेण संस्थिता नमस्तस्ये, नमस्तस्ये, नमस्तस्ये नमोः नमः" का नाटक करते देखा जा रहा है। उसी नाटक की तमाशबीन बनी देश में सर्वोच्च शिखर पर गिनी-चुनी नारियां फुले नहीं समा रही हैं मगर अपने प्राणमित्र रमफेरवा कि फटी साड़ी में लिपटी माई को अभी भी नहीं पता कि विश्वमहिला दिवस क्यों और कब मनाया जा रहा है? अपने देसवा मा ऐसन कानून बने के बादो का गारंटी है कि उसके खेत किसी दबंग द्वारा काटे जाने के बाद जब वह दारोगा जी के पास रपट लिखाने जाएगी तो वह पहले किसी विलेन कि तरह हँसेंगे फिर भगा देंगे। जुम्मन मियां तो समझदार मुसलमान हैं। अक्सर सुनाया करते हैं कि माँ के कदमों के नीचे जन्नत होती है। पर जब उनकी मोहतरमा प्रधान बनीं तो वह सिर्फ कागज़ तक सिमट कर रह गयीं। गाँव में हुकुम जुम्मन मियां का ही चलता रहा। जैसे निकाह के बाद मोहतरमा नकाब में पीछे-पीछे चलती रहीं, आज भी दो बच्चों कि माँ बन जाने के बाद और परधानी का ओहदा सम्भालने के बाद उसी तरह पीछे-पीछे चलती रही और जुम्मन मियां बीवी के आगे-आगे खुद परधानी का शाही ख़िलत में सजे-सवरें शान से ए०डी०ओ० बी०डी०ओ० पर रोब झाड़ते रहे।

मतलब यह कि लाख महिला आरक्षण विधेयक कानून का रूप ले ले मगर पुरुष प्रधान समाज का वर्चस्व जैसे का तैसा रहेगा क्योंकि मानसकिता जब तक रहेगी तब तक यूं ही नाटक चलता रहेगा। पौराणिक युग की विदुषियों के समय कहाँ विश्व महिला दिवस और कहाँ महिला आरक्षण के लिए शोर-गुल मचाया जाता था। प्रश्न है पुरुष प्रधान समाज की मानसिकता बदलने की और नारी समाज को स्वयं सशक्त होने की...।

*(**नोट:** (12/03/2010 को स्थानीय हिन्दी दैनिक 'जनमोर्चा' में प्रकाशित)*

-सुदामा सिंह